Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 GISRRJ | Volume 6 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

भारत के गाँव : मिथक और वास्तविकताएँ

अच्छेलाल प्रजापति
पीजीटी–भूगोल, राजकीयकृत +2 उच्चविद्यालय हरिनामांड, चैनपुर, पलामू, झारखण्ड।

Article Info
Volume 6, Issue 5
Page Number : 26-31
Publication Issue :
September-October-2023
Article History
Accepted : 01 Oct 2023
Published : 15 Oct 2023

शोधसारांश– भारतीय गाँवों को एक "अविवृत्त" एवं "पृथक" प्रणाली के रूप में चित्रित किया गया है। हाउस ऑफ कॉमन्स की प्रवर समिति की एक रिपोर्ट में एक ब्रिटिश प्रशासक, चार्ल्स मेटकाफ ने भारतीय गाँव को अखंड, सूक्ष्म और अपरिवर्तनीय इकाई के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने कहा, "भारतीय ग्रामीण समुदाय “लघु गणराज्य” हैं, जिनके पास लगभग वह सब कुछ है जो उन्हें चाहिए और वे किसी भी वाह्य प्रभाव से लगभग स्वतंत्र हैं।"

संकेतशब्द : गांव, सामाजिक संरचना, धार्मिक संरचना, आर्थिक संरचना, राजनीतिक संरचना।

हाल के ऐतिहासिक, मानवशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि भारतीय गाँव शायद ही कभी गणतंत्र थे। भारत के गांव कभी भी आत्म निर्भर नहीं थे। भारतीय गाँवों का संबंध सम्पूर्ण समाज से रहा है। अतीत काल से ही भारत में प्रवासन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, काम और व्यापारिक गतिशीलता, प्रशासनिक संबंध, अंतर–क्षेत्रीय बाजार, अंतर–ग्राम आर्थिक व जाति सम्बन्ध और धार्मिक तीर्थ यात्राआदि प्रचलित थे तथा गांव को पड़ोसी गांवों और सम्पूर्ण समाज से जोड़ रहे थे। आधुनिक काल में आधुनिकीकरण की नई शक्तियों ने अंतर–ग्रामीण और ग्रामीण शहरी संपर्क को बढ़ावा दिया।

गांव क्या है?- भारत में सरकारी कामकाज के उद्देश्य से 'गांव' को राजस्व इकाई के रूप में परिभाषित किया गया है। भारत सरकार के लिए गांव से तात्पर्य एक राजस्व गांव है। जिसमें एक बड़ा गाँव या छोटे गाँवों का समूह शामिल हो सकते है। हालाँकि, जनगणना आयोग के अनुसार गाँव की पहचान उसके नाम से की जाती है जिसकी निश्चित सीमाएँ होती हैं। भारतीय जनगणना ने गाँव को परिभाषित किया है कि "ग्रामीण क्षेत्रों के लिए मूल इकाई राजस्व गाँव होता है जिसकी निश्चित सर्वेक्षित सीमाएँ होती हैं। राजस्व गाँव में कई बस्तियाँ शामिल हो सकती हैं लेकिन पूरे गाँव को जनगणना के आंकड़ों की प्रस्तुति के लिए एक इकाई माना गया है। गैर–सर्वेक्षित क्षेत्रों जैसे वन क्षेत्रों के भीतर गांव, प्रत्येक वन क्षेत्र अधिकारी की इलाके के भीतर स्थानीय रूप से मान्यता प्राप्त सीमाओं के साथ प्रत्येक आवास क्षेत्र को एक इकाई के रूप में माना जाता है।"

ग्रामीण सामाजिक गठन के निर्धारक- ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने तर्क दिया है कि ग्रामीण सामाजिक जीवन या ग्रामीण जीवन शैली कुछ कारकों के परस्पर क्रिया का परिणाम है। इन्हीं कारकों ने ग्राम्य जीवन के सामाजिक गठन को निर्धारित किया है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

जाति, गोत्र, कुटुम्ब, राजनीति या अर्थव्यवस्था सभी कारकों के समूह द्वारा निर्धारित किए गए हैं जो गाँव की बस्ती के लिए विशिष्ट हैं। वे कारक इस प्रकार हैं:

ग्रामीण सामाजिक गठन के निर्धारक

भौगोलिक पर्यावरण	**सामाजिक वातावरण**	**सांस्कृतिक पर्यावरण**
स्थान	प्राथमिक समूह संपर्कों की प्रबलता।	सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की सरलता
जलवायु	सामाजिक भेदभाव	सामाजिक नियंत्रण
स्थलाकृति	सामाजिक स्तरीकरण	ग्रामीण ज्ञान और कौशल
प्राकृतिक संसाधन	प्रवासन और गतिशीलता	पदानुक्रमऔर जीवन स्तर

भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना- भारत प्राचीन सभ्यता का देश है। यहां सिंधु घाटी सभ्यता तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व अपने उत्कर्ष पर थी। तब से भारत में ग्रामीण और शहरी केंद्र सह-अस्तित्व में थे। केवल ऋग्वैदिक काल (लगभग 1500-1000 ई.पू.) के दौरान लोग बसे हुए गांवों में रहते थे। उस संक्षिप्त अंतराल में किन्हीं कारणों से शहरी केंद्र समाप्त हो गए थे। ग्रामीण क्षेत्रों में तीन मुख्य प्रकार के आवास प्रतिरूप देखे गए हैं। 1. सबसे आम प्रकार पूरे देश में पाए जाने वाला प्रतिरूप केंद्रीकृत गांव हैं। यहां, घरों का तंग समूह ग्रामीणों के खेतों से घिरा रहता है। इस मामले में कुछ गाँवों से एक बाहरी टोला या कई उपग्रह बस्तियाँ भी जुड़ी हुई पाई जाती हैं। 2. कुछ हिस्सों में रैखिक बस्तियाँ हैं। इस तरह की बस्तियों में, घर क्रमशः रैखिक रूप में फैले होते हैं, प्रत्येक घर अहाते से घिरे होते हैं। हालांकि, जहां एक गांव समाप्त होता है, दूसरा प्रारम्भ हो जाता है। जिसे भौतिक रूप से सीमांकन करना बहुत कठिन हो जाता है 3. तीसरे प्रकार का प्रतिरूप प्रकीर्ण होता है। इसमें घर बिखरे या दो-तीन घरों के समूह में होते है। इस मामले में भी गांवों का भौतिक सीमांकन स्पष्ट नहीं हो पाता है। ऐसी बस्तियाँ पहाड़ी क्षेत्रों में, हिमालय की तलहटी, गुजरात के उच्च क्षेत्रों और महाराष्ट्र की सतपुड़ा श्रेणी में पाई जाती हैं।

ग्रामीण जीवन की विशेषता – ग्रामीण लोगों का प्रकृति से सीधा संबंध है। भूमि, पशु और वनस्पति जीवन से ग्रामीणों का प्रत्यक्ष जुड़ाव पाया जाता है। कृषि इनका मुख्य व्यवसाय रहा है। भारत में लंबे समय से ग्रामीण सामाजिक संस्थाएँ परिवार, रिश्तेदारी, जाति, वर्ग जैसी व्यवस्थाएं चली आ रही है और यही गाँव की ऐतिहासिक जड़ें और संरचनाएं हैं। जो ग्रामीण लोगों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के प्रत्येक भाग में परिलक्षित होती हैं

गाँव और अर्थव्यवस्था- यह धारणा कि पूर्व-ब्रिटिश भारत में गाँव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थे, जो जजमानी प्रणाली, अनाज में भुगतान (वस्तुविनिमय) और अल्प विकसित संचार द्वारा निर्मित हुआ था,यथार्थ नहीं है। वास्तविकता यह है कि पारंपरिक भारत में पड़ोसी गांवों में साप्ताहिक बाजार मौजूद थे, यह प्रमाणितकरता है कि स्थानीय रूप से उपलब्ध वस्तुओं जैसे शादियों के लिए आवश्यक चांदी और सोना आदि हेतु शहरों पर निर्भरता नहीं थी लेकिन गाँवों की निर्भरता समीपस्थ साप्ताहिक बाजारों पर अवश्य थी। ये बाजार न केवल आर्थिक उद्देश्य की बल्कि राजनीतिक, मनोरंजन और सामाजिक उद्देश्य की भी पूर्ति करते थे। इसी प्रकार सभी दस्तकार और सेवाप्रदायी जातियाँ विशेषकर छोटी बस्तियों में नहीं रहती थीं।जैसा कि प्रोफेसर काशीनाथ सिंह (1972) ने भारतीय ग्रामों की सामाजिक-स्थानिक संरचना की व्याख्या को धार्मिक-सांस्कारिक और धर्म निरपेक्ष प्रभावी प्रतिमान के माध्यम से किया है। जिसमें उन्होंने विभिन्न जातीय संरचना वाले गांवों एवं नगलों की आर्थिक बाध्यताओं और प्रकार्यात्मक निर्भरताओं को उजागर किया है।

पूर्व ब्रिटिश काल के दौरान छोटी बस्तियों का अनुपात बहुत अधिक रहा होगा क्योंकि पूर्वब्रिटिश शासन के दौरान देश के विभिन्न हिस्सों में अखिल भारतीय स्तर पर बड़ी सिंचाई परियोजनाओं को शुरू किया गया था। सिंचाई ने क्षेत्र पर बड़ी संख्या में लोगों को सक्षम बनाया। गाँवों के अध्ययनों से यह विदित हुआ है कि कुछ सेवाप्रदायी जातियाँ कई गाँवों को सेवाएँ प्रदान करती हैं। ग्रामीण हमेशा आसपास के गांवों पर निर्भर रहते थे। शहरी आबादी खाद्यान्न, प्रसंस्कृत भोजन और हस्तशिल्प के लिए कच्चे माल की बुनियादी जरूरतों के लिए गांव की उपज पर निर्भर रहते है। भारत में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के विस्तार ने भारतीय ग्रामीणों को जूट और कपास जैसे उत्पादों के माध्यम से विश्व बाजार के साथ जोड़ दिया। 20वीं शताब्दी के दौरान, विशेष रूप से प्रथम विश्व युद्ध के बाद, औद्योगीकरण और शहरीकरण के साथ, नए आर्थिक अवसरों की उपलब्धता ने गाँव को व्यापक आर्थिक प्रणाली का हिस्सा बना दिया है।

एम.एस.ए. राव ने भारत में ग्रामीणों पर तीन प्रकार के शहरी प्रभावों की पहचान की है। सबसे पहले, ऐसे गाँव हैं जिनमें बड़ी संख्या में लोगों ने भारतीय शहरों और यहाँ तक कि विदेशी शहरों में भी रोजगार हेतु प्रवास किया है। प्रवासी गाँव में रह रहे अपने परिवारों को नियमित रूप से पैसा भेजते हैं। शहरी रोजगार से अर्जित धन का उपयोग उनके गांवों में अच्छा घर बनाने, शिक्षा प्राप्त करने, शिक्षण संस्थानों की स्थापना आदि के लिए दान देने, भूमि और उद्योग में निवेश करने के लिए किया जाता है। जिसके कारण उनके परिवारों की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है। इस प्रकार शहरी प्रभाव गांवों में महसूस किया जाता है, भले ही वे भौतिक रूप से किसी शहर या कस्बे के पास स्थित न हों।

दूसरे प्रकार का शहरी प्रभाव उन गाँवों में देखा जाता है जो एक औद्योगिक शहर के पास स्थित हैं। जिनकी भूमि पूरी तरह या आंशिक रूप से अधिग्रहित की गई। उन क्षेत्रों में अप्रवासी श्रमिकों का प्रवाह अधिक हो जाता है जिससे गांव में किराये के घरों और बाजार की मांग को बढाता है। जिसका प्रभाव ग्राम अर्थव्यवस्था पर परिलक्षित होता है। गाँव पर तीसरे प्रकार का प्रभाव महानगरीय शहरों का विकास है। जैसे-जैसे शहर का विस्तार होता है, यह बाहरी इलाकों में स्थित गांवों को आत्मसात कर लेता है। कई गांव की भूमि उपयोग शहरी विकास के लिए किया जाता है। इन भूमिहीन गांवों के ग्रामीण, जिन्हें भूमि के बदले नकद मुआवजा मिलता है, नगरीय क्षेत्र से दूर की जमीन क्रय करते हैं, वाणिज्य में निवेश कर सकते हैं या धन को विलासिता पूर्ण जीवन पर बर्बादी कर देते हैं। ग्रामीण आमतौर पर शहरी रोजगार की तलाश करते हैं। शहर के किनारे बसे गांव जिनकी भूमि अभी तक अधिग्रहित नहीं हुई है, बाजार हेतु बागवानी, डेयरी फार्मिंग और मुर्गी पालन में संलग्न हो सकते हैं।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश काल में भी भारतीय गाँव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं थे। ब्रिटिश शासन के दौरान शुरू हुआ औद्योगीकरण और शहरीकरण में स्वतंत्रता के बाद गति प्राप्त हुई। जिससे गांव व्यापक रूप से आर्थिक नेटवर्क का हिस्सा बन गये है। ग्रामीण इलाकों के नियोजित विकास ने परम्परागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था को तबाह किया है।

ग्राम, जाति और नातेदारी व्यवस्था- गाँव में जातियों की एक ऊर्ध्वाधर अन्योन्याश्रितता होती है, यानी विभिन्न जातियों के बीच संबंध जजमानी व्यवस्था में प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन ऊर्ध्वाधर संबंधों को जाति और रिश्तेदारी के क्षैतिज बंधनों से अलग कर दिया जाता है। यानी, जजमानी व्यवस्था में एक जाति दूसरी जाति से सम्बन्ध तो रख सकती है लेकिन अलग-अलग जातियों में वैवाहिक या रिश्तेदारी सम्बन्ध नहीं हो सकता। एक जाति के भीतर संबंध दूसरे गांव और कस्बों तक फैले हुए मिलते हैं। एक जाति के रिश्तेदार अलग-अलग गांवों में रहते हैं और जन्म, शादी और मृत्यु जैसे विभिन्न अवसरों पर उन से विचार-विमर्श करते है। जरूरत के समय मदद हेतु एक दूसरे पर निर्भर भी रहते है। उत्तर भारत में जहां सगोत्र विवाह के साथ गांव बहिर्गमन पाया जाता है। जिसमें किसी को अपने बेटे या बेटी के वैवाहिक सम्बन्ध हेतु गांव के बाहर जाना पड़ता है। दक्षिण भारत में ग्राम बहिर्गमन आवश्यक नहीं है। अपने गांव में ही मौजूद रक्त सम्बन्धों में वैवाहिक सम्बंधों

पर कोई पाबंदी नहीं है। इसके बावजूद भी कुछ लोग वैवाहिक सम्बन्ध हेतु अन्यत्र गांवों में गमन करते हैं। चूंकि सजातीय विवाह एक नियम है, इसलिए किसी के परिजन आमतौर पर किसी की जाति से संबंधित होते हैं। जातिगत संबंधों और अन्य जातिगत मामलों को जाति पंचायत द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जिसके सदस्य विभिन्न गांवों से ताल्लुक रखते हैं। पूर्व ब्रिटिश भारत में, जातीय संबंधों का क्षैतिज विस्तार कई छोटे राज्यों की राजनीतिक सीमाओं के साथ-साथ सुलभ परिवहन और संचार साधनों के अभाव में सीमित था। ब्रिटिश काल के दौरान अंग्रेजों द्वारा लाए गए देश के एकीकरण और बेहतर सड़कों और रेलवे, सस्ते डाक और छपाई की शुरुआत के साथ, अंतर्राज्यीय संबंधों में तेजी से प्रसार हुआ क्योंकि एक दूसरे के साथ नियमित संपर्क में रहना आसान हो गया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गांव हमेशा रिश्तेदारी और जाति के उद्देश्य से अन्य गांवों और कस्बों के साथ संबंध रखता है। यह पूर्व ब्रिटिश भारत में सीमित था क्योंकि संचार साधन बेहतर नही थे और छोटे राज्य का अस्तित्व था, जिनकी सीमाएं प्रभावी बाधाओं के रूप में कार्य करती थीं। ब्रिटिश शासन के दौरान जातीय संबंधों का क्षैतिज विस्तार बहुत बढ़ गया और आजादी के बाद से इसने गांव को बहुत व्यापक क्षेत्र से जोड़ दिया।

गाँव और धार्मिक व्यवस्था - किसी भी भारतीय गाँव के धर्म का अध्ययन गाँव की धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं और व्यापक भारतीय सभ्यता के बीच परस्पर क्रिया की दोहरी प्रक्रिया को दर्शाता है। रॉबर्ट रेडफ़ील्ड से 'महान परंपरा' और 'छोटी परंपरा' की अवधारणाओं को लेते हुए मैकिम मैरियट बताते हैं कि अनुष्ठान और विश्वास के कुछ तत्व ग्राम जीवन की उपज हैं जो भारत की महान सांस्कृतिक परंपरा के गठन के लिए ऊपर नीचे तक फैलते हैं, जबकि अन्य तत्व स्थानीय संशोधन का प्रतिनिधित्व करते हैं। महान परंपरा के तत्वों का इसमें नीचे की ओर संचार हुआ। छोटी और बड़ी परंपराओं के बीच परस्पर क्रिया की इस दोहरी प्रक्रिया के दो पहलुओं को संदर्भित करने के लिए मैरियट ने क्रमशः 'सार्वभौमिकीकरण' और "संकीर्णता" शब्द दिए हैं। एम.एन.श्रीनिवास की संस्कृतिकरण की अवधारणा भी स्थानीय स्तर पर धर्म और अखिल भारतीय हिंदू धर्म के बीच संबन्ध को दर्शाती है। संस्कृति तत्व उच्च जातियों से निम्न जातियों तक फैले हुए हैं। संचार के विकास और साक्षरता के प्रसार के कारण ब्रिटिश शासन के दौरान और बाद में सांस्कृतिक धार्मिक विचारों का प्रसार बढ़ा। पश्चिमी प्रौद्योगिकी, रेलवे, प्रिंटिंग प्रेस, रेडियो, टेलीविजन और फिल्मों ने संस्कृतिकरण के प्रसार में मदद की है। इन सभी ने महाकाव्यों, रामायण, महाभारत, और मीरा, तुलसीदास जैसे संतों के जीवन के बारे में धार्मिक कहानियों को लोकप्रिय बनाया है और गांव को व्यापक ब्रह्मांड का हिस्सा बना दिया है।

गाँव और राजनीतिक व्यवस्था- उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा भारतीय गांवों को छोटे गणतंत्र के रूप में वर्णित किया गया था, जिसमें स्वशासन का उनका सरल रूप था और भूमि की उपज में हिस्सेदारी और युवाओं से युद्धों में भाग लेने के अतिरिक्त उच्च राजनीतिक प्राधिकरण का गाँव मे हस्तक्षेप लगभग नगण्य था। गाँव जिस क्षेत्रीय इकाई का हिस्सा हैं उसमें वह सामान्य रूप से कार्य करता था।उसे इस बात की कोई परवाह नही थी कि कौन उस राज्य में सत्तासीन है। उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के रूप में भी वर्णित किया गया था। जिसके पास लगभग वह सब कुछ था जो उन्हें चाहिए था। भारतीय गाँव का यह वर्णन अति सरलीकृत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही कुछ सामाजिक मानवशास्त्रियों ने भारतीय गाँवों का गहन अध्ययन किया तथा भारतीय गाँवों के पारंपरिक वर्णन पर सवाल उठाना शुरू कर दिया था। अपने निष्कर्षों के आधार पर उन्होंने प्रदर्शित किया कि भारतीय गाँव सम्पूर्ण समाज और सभ्यता का हिस्सा रहे हैं, न कि ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा वर्णित 'छोटे गणराज्यों' का। यह बिल्कुल गलत है कि पूर्व-ब्रिटिश भारत में गांव राजनीतिक रूप से स्वायत्त थे सिवाय स्थानीय सरदार या राजा को कर का भुगतान करने और युद्ध के लिए युवक प्रदान करने के। पूर्व ब्रिटिश भारत में गांवों का राज्य के साथ संबंध में निष्क्रिय नहीं थी। ग्रामीणों का शासकों के साथ संबंध थे। ग्रामीण विद्रोह कर सकते थे और सत्ता परिवर्तन हेतु शासक के प्रतिद्वंद्वी का समर्थन कर सकते थे। ब्रिटिश शासन ने गांव और शासक के

बीच के रिश्ते को बदल दिया। संचार के विकास के बाद अंग्रेजों की राजनीतिक विजय हुई। पुलिस, राजस्व अधिकारी और अन्य सरकारी कर्मचारी गांव में आए। इसने अंग्रेजों को एक प्रभावी प्रशासन स्थापित करने में सक्षम बनाया। अंग्रेजों ने कानून अदालतों की एक प्रणाली स्थापित की। प्रमुख विवादों और आपराधिक मामलों को अदालतों में सुलझाया जाने लगा । इससे ग्राम पंचायत की शक्ति बहुत कम हो गई। आजादी के बाद से, संसदीय लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार की शुरूआत ने गांव को व्यापक राजनीतिक व्यवस्था की सुदृढी करण ने गांव को और भी एकीकृत कर दिया है। ग्रामीण न केवल ग्राम पंचायत जैसे स्थानीय निकायों के सदस्यों का चुनाव करते हैं बल्कि राज्य विधानमंडल और संसद के सदस्यों का भी चुनाव करते हैं। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीतिक दल गाँव में घर-घर प्रचार कर रहे हैं और अपने दलों और प्रत्याशियों के लिए समर्थन जुटा रहे हैं। हालांकि, गांव एक राजनीतिक इकाई है जिसमें दिन-प्रतिदिन के प्रशासन को चलाने के लिए एक निर्वाचित पंचायत होती है। यह जिले का हिस्सा है, जिला राज्य का भाग है और राज्य भारतीय संघ का अंग है। राजनीतिक प्रणाली के इन विभिन्न स्तरों के बीच अंत: क्रिया होती है।

निष्कर्ष- संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि, गाँव की एक निश्चित संरचना है और स्वयं ग्रामीणों के लिए एक स्पष्ट इकाई है, यह उस बड़ी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के भीतर एक उप-व्यवस्था भी है जिसमें यह मौजूद है। पूर्व ब्रिटिश भारत में सड़कों की अनुपस्थिति और खराब संचारगांवों और कस्बों के बीच सीमित संपर्क का कारण था। फिर भी परंपरागत रूप से भी गांव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं था। अधिकांश गांवों में आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन नहीं होता था और उन्हें उनके लिए साप्ताहिक बाजारों और कस्बों में जाना पड़ता था। फिर से प्रत्येक गाँव में सभी आवश्यक कारीगर और सेवा करने वाली जाति नहीं थी और इस उद्देश्य के लिए गाँवों के बीच परस्पर निर्भरता थी। सामाजिक रूप से भी गांव कभी भी एक अलग इकाई नहीं रहा है। रिश्तेदारी और जाति के बंधन गांव से बाहर तक फैले हुए थे जिसका रूप आज भी देखने को मिलता है। यह उत्तर में और भी अधिक है, जहां ग्राम बहिर्विवाह का प्रचलन पाया जाता है। ब्रिटिश शासन के तहत देश के एकीकरण के साथ जाति बंधनों के क्षैतिज प्रसार की बाधाएं हट गईं। सड़कों और रेलवे के निर्माण, सस्ते डाक और प्रिंटिंग प्रेस ने एक बड़े क्षेत्र में फैली जाति के सदस्यों को संपर्क में रहने में मदद की। आजादी के बाद से अपने उम्मीदवार को जिताने में वोटों के महत्व ने जाति की क्षैतिज एकता को और बढ़ा दिया है। जहां तक गांव के धर्म का संबंध है,स्थानीयकृत छोटी परंपरा और भारतीय सभ्यता की महान परंपरा के बीच एक सतत संपर्क सार्वभौमिकता और संकीर्णता की दोहरी प्रक्रिया के माध्यम से होता है। राजनीतिक रूप से पूर्व-ब्रिटिश भारत में राजा ग्रामीणों के दैनिक मामलों में हस्तक्षेप करने, नियंत्रित करने व आदेश देने हेतु सक्षम थे। उपज के एक बड़े हिस्से का भुगतान राजा पर ग्रामीणों की निर्भरता का प्रतीक था। इसके अलावा, राजा ग्रामीणों के प्रति कई कर्तव्यों का पालन करते थे। ब्रिटिशकाल में अंग्रेजों ने देश के अधिकांश भाग को अपने शासन में ले लिया। समान कानून और केंद्रीकृत प्रशासन की शुरूआत ने गांव को देश की व्यापक राजनीतिक व्यवस्था का हिस्सा बना दिया। संसदीय लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार की शुरूआत ने राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों के साथ गाँव के एकीकरण को और बढ़ाया। इस प्रकार, गांव और भारतीय समाज की व्यापक इकाइयों के बीच एकीकरण और निरंतरता आज बहुत अधिक दिखाई देता है लेकिन यह पारंपरिक भारत में भी काफी हद तक मौजूद थे।

संदर्भग्रंथसूची

1. Singh, K.N.1972.An Approach to the Study of the Morphology of the Indian Village, in Rural Settlements in Monsoon Asia, edited by R.L. Singh (Varanasi : NG SI), pp . 203-214.
2. Dube, S.C.1958.India'sChanging Village.London.Routledge and Kegan Paul.
3. Desai, A.R. 1961. Rural Sociology in India. Bombay. Popular Prakashan,
4. Gandhi , M.K. 1909. Hind Swaraj, Navjivan Publication. Ahmedabad
5. Mandelbaum, D.G. 1970. Society in India. Berkeley and Los Angeles
6. Srinivas, M.N.1968.Social Change in Modern India. University of California Press.
7. Singh, Yogendra. 1977. Social Stratification and Change in India. New Delhi. Manohar.
8. Singh, Yogendra. 1994. Modernisation of Indian Tradition. Jaipur. Rawat Publication.
9. तिवारी, आर.सी. 2011. अधिवासभूगोल. इलाहाबाद, प्रयाग पुस्तक भवन.